© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN: 2454 – 308X | Volume: 08, Issue: 02 | April - June 2022

निरुक्त का सामान्य परिचय एवं निर्वचन प्रकार

जोगिन्द्र सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर

राजकीय महाविद्यालय हांसी।

*Corresponding Author

निरुक्त परिचय -

निरुक्त शब्द निर् + वच + त (क्त) से निष्पन्न है। निर् उपसर्ग है तथा इसका अर्थ है -पूरी तरह से। वच् धातु है और इसका अर्थ है कहना। त प्रत्यय है। इसके दो अर्थ भाव और करूणा। इस प्रकार इस शब्द का समुचित अर्थ होता है- 1. पूरी तरह से कहना। 2. पूरी तरह से जिस के द्वारा कहा जाता है वह शास्त्र है आचार्य दुर्ग ने निर्वचन शब्द का अर्थ 'निष्कृष्य विगृहा वचनम्- निर्वचनम्' बताया है इसका तात्पर्य है शब्द में छुपे हुए अर्थ को विग्रह के द्वारा कहना अर्थात् स्पष्टीकरण तथा स्पष्ता करने वाले शास्त्र को निरुक्त कहते है। निर्वचन केवल सामान्य ढंग से व्याख्या करने की पद्धति को कहते है। यास्क ने निर्वचन दो प्रकार के किए है।

1. शब्द - निर्वचन
2. अर्थ - निर्वचन

1. शब्द - निर्वचन - इसमें वे निर्वचन आते हैं जिनमें उन्होंने शब्द की प्रकृति उसमें होने वाले विकार (प्रादेशिक गुण) को ध्वनि साम्य की दृष्टि से ध्यान में रखा है जैसे- अश्व, पुत्र, सहस्र।

2. अर्थ- निर्वचन- वर्ण साम्य की अपेक्षा प्रमुख रूप से अर्थ साम्य को दृष्टि में रखकर किए जाते है जैसे निघण्टु, समुद्र: परिचय निरुक्त को वेद का श्रोत कहा गया है। श्रुतज्ञान होने के कारण वेदाध्ययन में श्रवण का विशेष महत्व है। अतः "निश्चयेन निश्शेषेण उकतमिति निरुक्तम्" के अनुसार वैदिक पदो का एकार्थ सम्बन्ध से निश्चयात्मक और निश्शेष व्युत्पत्ति - परक विवेचन ही निरुक्त कहलाता है। सम्प्रति एकमात्र निघण्टु ही इस कोटि का उपलब्ध ग्रन्थ है जिसके ऊपर मुनि मास्क विरचित निरुक्त पाया जाता है। निघण्टु मं कुल पांच अध्याय है जिन में पहले तीन अध्यायों का नाम नैघण्टुकाण्ड, चैथे अध्याय को नैगमकाण्ड और अंतिम अध्याय को दैवतकाण्ड कहते है। नैघण्टुकाण्ड में भिन्न-भिन्न वैदिक पदों के व्युत्पत्तिपरक निर्वचन है। नैगमकाण्ड में एक ही पद के भिन्न-2 अर्थों अथवा एक ही अर्थ वाले विभिन्न पदों का वर्णन है। दैवतकाण्ड में विभिन्न देवताओ का उनके स्थान भक्ति साहचर्यादि के अनुरूप उल्लेख है। यास्ककृत निरुक्त-

यह ग्रन्थ 14 अध्यायों में विभक्त है। इसमें नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात आदि के लक्षण, भावविकार लक्षण, पदविभाग का ज्ञान, देवतापरिज्ञान, अर्थ, प्रशंसा, वर्णलोप, वर्णविपर्यय का विवेचन, सप्रसारर्थ व असप्रसार्य, धातु अभिशाप अभिज्ञा, परिवेदना, निंदा, स्तुति आदि के द्वारा मंत्राभिव्यक्ति, उपदेश और देवताओ का वर्गीकरण है। इसमें वैदिक शब्द निर्वचन के अतिरिक्त भाषा विज्ञान साहित्य, समाज शास्त्र और ऐतिहासिक विषयो का भी यथास्थान समुचित विवेचन मिलता है। यास्क ने इसमें पृथ्वी-अन्तरिक्ष और द्युस्थानीय भेद से देवताओ का वर्गीकरण किया है।

इस ग्रन्थ की टिकाओ में दुर्गाचार्य तथा महेश्वरकृत टीका और निरुक्तनिचय नामक लोक प्रसिद्ध है। वेदज्ञान के लिए अर्थज्ञान परमावश्यक है उसका प्रधान साधन निरुक्त या विवेचन है। निरुक्त शब्द की व्याख्या सायणाचार्य के अनुसार यह है- 'अर्थाेव बोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्र तद् निरुक्तम्' अर्थात् अर्थ जानकारी के लिए

स्वतंत्र रूप से जो पदो का संग्रह है वह निरुक्त कहलाता है दुर्गाचार्य का कहना है[1] कि अर्थ का परिज्ञान कराने के कारण यह अंग इतर वेदांडों तथा शास्त्रो में प्रधान है अर्थ प्रधान होता है और शब्द गौण होता है। व्याकरण में इस शब्द का ही विचार है। कल्प मंे मंत्रो के विनियोग का चिन्तन होता है। 'जो मन्त्र जिस अर्थ को शब्दतः संस्कार करने में समर्थ होता है, वही उसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार कल्प की मन्त्रो के अनुसन्धान के उपर विनियोग का विधान करता है अतः निरुक्त कल्प से भी अधिक महत्व का है। निष्कर्ष यह है कि शब्द का लक्षण तो व्याकरण के अनुसार किया जाता है परन्तु शब्द और अर्थ के निर्वचन का ज्ञान निरुक्त के द्वारा ही जाना जा सकता है। इस प्रकार निरुक्त वेद के अर्थ को जानने के लिए अति आवश्यक है। निरुक्त में वैदिक शब्दों की नियुक्ति दी गई है। निरुक्त शब्द का अर्थ है निरुक्त का यह सामान्य मत है प्रत्येक शब्द किसी न किसी धातु के साथ सम्बन्ध रखता है निरुक्त के अनुसार सब शब्द व्युत्पन्न है अर्थात् किसी न किसी धातु से बने हुए है। व्याकरण शाकटायन का भी यह मत था। निघण्टु के शब्दो का निर्वचन निरुक्त में किया गया है। निघण्टु में जिन शब्दो को सम्मिलित किया गया है उनका निर्वचन निरुक्त में किया गया है वेदमन्त्रो के अर्थज्ञान के लिए व्युत्पत्ति का ज्ञान आवश्यक है और वेदमन्त्रो के कठिन शब्दों की व्युत्पत्ति निरुक्त करता है। अतः उनके अर्थज्ञान के लिए निरुक्त का अध्ययन आवश्यक है। सायण के निरुक्त शब्द की व्याख्या कराते हुए कहा है कि - अर्थ के ज्ञान के लिए दूसरे की सहायता के बिना निरपेक्ष रूप से पदों का जहां पर कथन हो उसे निरुक्त कहते है।[2] दुर्गाचार्य का कथन है कि अर्थ का ज्ञान कराने के कारण ही यह वेदाग्गो में प्रधान है क्योकि व्याकरण तो शब्दों पर ही विचार करता है परन्तु शब्द और अर्थ के निर्वचन का

[1] दुर्गाचार्य वृति दृ पृ॰ -6
[2] निरुक्त अर्थाव बोधे निरपेक्षतया

ज्ञान कराता है। इस प्रकार निरुक्त वेदो के कठिन शब्दो की व्याख्या कराने वाला शास्त्र है यास्क ने तो इसे व्याकरण शास्त्र का पूरक माना है।

निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय -

वर्णागम, वर्णाविपर्यय, वर्ण विकार, वर्णनाश और धात्वर्थ का अतिशय योग ये निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय है निरुक्त वैदिक शब्दों का निर्वचन करता है। सभी शब्द किसी न किसी धातु से बने है। अतः सभी शब्द धातुज है व्याकरण शाकटायन का भी यही मत है कि सभी प्रतिपदिक शब्द धातुज है। इस प्रकार भाषा का मूल धातु है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन यास्क ने किया है जो भाषाशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है निरुक्त तीन काण्डों में विभक्त है। इसमे बारह अध्याय है और अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट के रूप में जोडे गए है। इस प्रकार निरुक्त में कुल 14 अध्याय है। निरुक्त के प्रथम काण्ड को नैघण्टुक काण्ड कहते है। इस काण्ड में तीन अध्याय है प्रथम अध्याय में व्याकरण और निरुक्त के सम्बन्धों पर विचार किया गया है। द्वितीय और तृतीय अध्यायों में पर्यायवाची शब्दों की व्याख्या है यास्क के अनुसार नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ये चार पदजात है इनमें नाम और आख्यात बिना किसी सहायता के स्वतन्त्र रूप से अर्थ को प्रकट करते है। नाम में सत्व की प्रधानता होती है और आख्यात भाव प्रधान होते है। भाव शब्द का निर्वचन है 'भवतीति भावः'। यास्क ने भाव विकार छह बताए है- जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति। निपात और उपसर्ग उच्चै और नीचै अर्थ में उपमा और पादपूर्ति में प्रयुक्त होते है।

द्वितीय काण्ड को नैगम काण्ड कहते है। नैगम काण्ड में एकपदानि अनवगत संस्कार पदों का वर्णन किया गया है जैसे पृथ्वी अर्थ में गौ आदि अनेक शब्द आये है और पृथ्वी, रश्मि, इन्द्रिय, गो आदि अनेक अर्थो में गो शब्द का प्रयोग है। इसी प्रकार वृक

शब्द भी अनवगत और अनेकार्थक है। वृक का अर्थ चन्द्रमा भी है और सूर्य भी है। निरुक्त के तृतीय अध्याय को दैवतकाण्ड कहते है। दैवत काण्ड में देवताओं की प्रधानतया स्तुति दी गई है।[3] देवता की स्तुति चार प्रकार की होती है- नाम, रूप, कर्म और बन्धु। स्तुत्ति के मन्त्र तीन प्रकार है परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत तथा अध्यात्मिक। यास्क के निरुक्त में तीन प्रकार के देवता बताए-पृथ्वी-स्थानीय, अन्तरिक्ष-स्थानीय और धुस्थानीय, पृथ्वी स्थानीय में अग्नि। अन्तरिक्ष स्थानीय इन्द्र या वायु और द्युस्थानीय में आदित्य आदि। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में अग्नि स्तुति है। जिनके निर्वचन में प्रकृति प्रत्यय के योग का ज्ञान नही हो सकता ऐसे मन्त्र निर्दिष्ट है। अन्त में ब्रह्म की स्तुति है। ब्रह्मनिष्ठ होकर कार्य करना श्रेष्ठ है। उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार निरुक्त में विविध प्रकार के शब्दों की व्युत्पत्ति बतायी गई है और प्रत्येक नाम शब्द का सम्बन्ध किसी न किसी धातु से जोड़ा गया है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी इसका महत्व है इसी कारण निरुक्त लोकप्रिय है। निरुक्त की रचना का मुख्य उदेश्य वेद मन्त्रों की विवेचन परक व्याख्या करना और देवताओं के स्वरूप को स्पष्ट करना था। यास्क ने इन उदेश्यों का स्वयं निर्देश किया है- (1) अथापीदमन्तरेण मन्त्रेवर्थप्रत्ययो न विद्यते (1ध्15) (2) अथापि याज्ञे दैवतेन बहवः प्रदेशा भवन्ति, तदेतोनोपे क्षितव्यम् (1ध्17) वेदों की व्याख्या तथा देवता विज्ञान को व्यवस्थित करने में यास्क का स्थान अद्वितीय है निरुक्त के निर्वचन विद्वानों ने वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश तथा धातु शब्द के प्रधान अर्थ से सम्बंध बताना इन पांच रूपों में देखा जा सकता है। निरुक्त एक कठिन ग्रन्थ है। स्थान-स्थान पर इसके उसके पाठ भी त्रुटिपूर्ण है।

निर्वचन प्रकार- नैरुक्तकारों का सिद्वान्त है कि शब्दों की प्रथम प्रवृत्ति प्रायः किसी न किसी क्रिया के आधार पर होती है, पीछे से वह शब्द गुणादि योग से तत्क्रिया

[3] निरुक्त तद्यानि नामानि ---

रहित अर्थ में भी प्रयुक्त हो सकता है। उदाहरणार्थ 'पाद' शब्द को ही लिजिए, पाद शब्द की प्रथम प्रवृति प्रधानरूप से पदन (गायन) क्रिया को लेकर हुई है- पद्यते गम्यतेऽनेनेति पादः। अश्वादि पशुपाद में ही गतिबाहुल्य देखा जाता है। इसलिए पाद शब्द की प्रथम प्रवृति अश्वादिपशु पाद में ही हुई। अश्वादि पशुओं के चार पाद होते है, उनके एक पाद एक चतुर्थांश है इसलिए चतुर्थांशत्वरूप गुण को लेकर भी पाद शब्द का प्रयोग होता है। श्लोक के चैथे हिस्से को भी पाद कहते है निष्कर्ष यह है कि निरुक्त अर्थगत प्रधान क्रिया पर ही ध्यान देकर तदवाचक धातु की कल्पना करके शब्द का निर्वचन करता है। इसी आधार पर नैरुक्तों का यह सिद्धान्त बना है कि 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' अर्थात् सारे नाम धातुज है। नैरुक्त इस बात की परवाह नहीं करता है यहां 'व' का 'ऊ' कैसे हो गया, 'ग' का 'घ' कैसे बन गया, पणिनी का सूत्र उसमें घटता नही। उदाहरणार्थ होतृ शब्द को लिजिए होता यज्ञ में एक ऋत्विज होता है। उसका काम है कि मन्त्रों से देवताओं की स्तुति करना। नैरुक्त होतृ शब्द का निर्वचन हु धातु का अर्थ दान और 'अदन' ऋत्विज होता में नहीं घटता। यद्यपि हु धातु से निर्वचन करने में व्याकरण की प्रक्रिया से तृच' प्रत्यय द्वारा होतृ शब्द आसानी से सिद्ध हो जाता है। तो भी नैरुक्त की यह प्रतिज्ञा है कि 'अर्थ नित्ये परीक्षेत न संस्कारमाद्रियते' अर्थात् अर्थ को दृष्टि में रखकर ही शब्द में प्रकृति प्रत्यादि की कल्पना करो। इस प्रकार शब्दों के अनुसार प्रकृते प्रत्यय विभाजन रूप में निर्वचन करना चाहिए जैसे रामः राम प्रतिपदिक (प्रकृति) विसर्ग (प्रत्यय) अतः नैरुक्त होतू शब्द का निर्वचन 'हे' धातु से ही करता है। हयते ब्रज भाषा में भवन को 'भौव 'पवन' को 'पौन' कैसे बन गया। आज लोग पण्डित जी के स्थान में पण्डिज्जी कहते है, उन्हे 'त' के आगे 'अ' का लोप करके 'त' को 'ज' करने का नियम किसने सिखाया? कहना होगा कि यह सब प्रकृति नियमानुसार स्वयं ही हुआ है। भाषा में विकास, पतन या परिवर्तन इसी प्रकार हुआ करता है।

2. अब वर्णागम का उदाहरण लिजिए। 'प्रस्कण्व' और 'हरिशचन्द्र' ये शब्द पहले 'प्रकण्व' और 'हरिचन्द्र' थे। पीछे इनका उच्चारण 'प्रस्कण्व और हरिश्चन्द्र' होने लगा। पाणिनी ने प्रस्कण्व 'हरिचन्द्रावृषी' यह सूत्र बनाकर इन दोनों शब्दों को उत्पन्न कर दिया। इन सूत्र का तात्पर्य है कि यदि प्रकण्व और हरिचन्द्र शब्द ऋषियों के लिए प्रयुक्त हो तो इनके मध्य में ककार और चकार से पूर्व 'स' (सुट) का आगम हो जाता है। अर्थात् 'प्रकण्व' को 'प्रस्कण्व' बोला जाता है और 'हरिचन्द्र' को हरिश्चन्द्र। ये दोनों ऋषि हैः पहला बह्मर्षि, दूसरा राजर्षि।

3. देशकाल की दृष्टि से एक ही भाषा के भिन्न-भिन्न साथ हो सकते है इसलिए शब्दों के निर्वचन में इस तथ्य को भी ध्यान रखना चाहिए। गढ़वाल जिले के बहुत लोग 'ब्रह्मचार्य' शब्द का 'ब्रह्मश्रचार्य' ऐसा बोलते है उन्होंने 'स' या 'श' का आगम किस आधार पर किया? 'कर्म' को साधारण जनता 'करम' कहती है उन्हें 'र' के आगे 'अ 'के आगम का उपदेश किसने दिया। कहना होगा कि निसर्ग ने दिया, इसके लिए पाणिनी का कोई सूत्र नहीं है।

लौकिक भाषा में 'मतलब' के स्थान में 'मतबल' 'चाकू के स्थान पर 'काचू ऐसा बोलते है उन्हें यह वर्णस्थान-विपर्यम किसने सिखाया? यह सही है कि यह विसर्ग प्रवाह है वैदिक शब्दों में भी ऐसा देखा गया है।

यास्क के अनुसार निर्वचन प्रकार

किसी भाषा के 'शब्द' रचना की दृष्टि से कई प्रकार के होते है, इसलिए उन सबका निर्वचन किसी एक आधार पर नही हो सकता। यास्क ने निघण्टु में संकलित शब्दों को ध्यान में रखकर निर्वचन के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है-

1. ''तद्येषु पदेषु स्वर संस्कारी समर्थौ प्रादेशिकेन विकारेणान्वितौ स्यात्ताम् तथा तानि निब्रूयात्।''

2. ''अथानन्चितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यपरीक्षेतकेनचिद् वृत्ति सामान्येन।''

3. ''अविद्यमानेसामान्येऽप्यक्षर-वर्ण सामान्यन्निब्रूयात्''[4]

निरुक्त व्याख्याकारों की दृष्टि में शब्द तीन प्रकार के होते है।

1. प्रत्यक्षवृत्ति

2. परोक्षवृत्ति

3. अतिपरोक्षवृत्ति

1. प्रत्यक्षवृत्ति- जिनमें प्रकृति प्रत्यय स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते है अतः उनका निर्वचन सीधे व्याकरण के द्वारा ही हो सकता है। इसके लिए निरुक्त की कोई आवश्यकता नहीं।

2. परोक्षवृत्ति- जिनमें मूल प्रकृति प्रत्यय काफी बदल गए है इसलिए केवल व्याकरण के द्वारा उनका निर्वचन नही हो पाता। ऐसे शब्दों के अर्थ को ध्यान में रखकर उनमें प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना करनी पड़ती हैं।

3.अतिपरोक्षवृत्ति - ऐसे शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय में इतना अधिक परिवर्तन हो चुका होता है कि किसी भी रूप में उनको उनके मूल रूप में उद्घाटित करना बहुत कठिन है।

जिन पदों में स्वर और व्याकरण की प्रक्रिया अनुकूल अर्थ वाली हो व धातु में होने वाले उचित परिवर्तन से युक्त हो उसका निर्वचन उसी प्रक्रिया के आधार पर करना चाहिए।

[4] वैदिक सग्रंह एवं व्याख्या-पृ0 427

उदाहरण- पाचक इसमें पच् वुल (अक) के रूप में व्याकरण की प्रक्रिया तथा √ पच् धातु का √ पच् के रूप में परिवर्तन स्पष्ट रूप में प्रदर्शित हो रहा है। अतः इसका निर्वचन पचतीति पाचकः। धावक, गायक आदि ऐसे ही शब्द है।

जिनका अर्थ अनुकूल न हो तथा जिसमें धातु का परिवर्तन या विकार भी दृष्टिगत न होता हो ऐसे पदों का परीक्षण उनके अर्थ के प्रति सतत जागरूक अन्वेषक को किसी समान प्रवृत्ति या विशेषता के आधार पर करना चाहिए। उदाहरण -यो अस्मै घंस उत्त वा या ऊधानि सोमं सुनोति भवति घुमां अहं [5]

यहाँ ऊधस (ऊधनि के प्रतिपादिक) शब्द रात्रि के अर्थ में आया है। उधस् शब्द का निर्वचन कर देने अर्थवाली उन्द (उन्दी) धातु और असुन् प्रत्यय से निष्पन्न माना गया है। इसी आधार पर ऊधस् का अर्थ होता है थन जो अपनी दूध की धारा से भूमि को गीला करता है किन्तु रात्रि रूप अर्थ में यह नहीं पाई जाती, क्योंकि रात्रि किसी पदार्थ को सामान्य रूप से गीला नहीं करती। इसलिए रात्रि के अर्थ में ऊधस् शब्द का उन्द धातु से निर्वचन नहीं किया जा सकता। किन्तु धन और रात्रि में एक समान विशेषता पाई जाती है वह है स्नेह की प्रवृति थन दूध के द्वारा स्निग्ध करता है जबकि रात्रि ओस की बूंदों के द्वारा। इसी आधार पर थन का वाचक उधस् शब्द उपर्युक्त मन्त्र में रात्रि का भी वाचक बन गया है।

-अतिपरोक्षवृत्ति- जिसका अर्थ है शब्द में यदि किसी भी प्रवृत्ति की समानता व दिखाई पड़ती हो तो निर्वचनीय शब्द में पाए जाने वाले केवल स्वर या व्यंजन रहित स्वर रूप अक्षर और व्यंजनों की समानता के आधार पर निर्वचन करना चाहिए।

प्रत्येक शब्द का निर्वचन अवश्य किया जाना चाहिए यदि मार्ग में कितनी ही कठिनाईयां हो। निर्वचन कर्ता का मुख्य ध्यान शब्दार्थ पर होना चाहिए और व्याकरण

[5] वैदिक सग्रंह एवं व्याख्या पृ0 430

की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। शब्दों के अर्थ के अनुसार प्रकृति प्रत्यय विभाजन के रूप में निर्वचन करना चाहिए। 'जैसे रामः यहाँ राम प्रतिपदिक विसर्ग (प्रत्यय) है। शब्दों के निर्वचन के सन्दर्भ में भाषा इतिहास को देखना चाहिए।

देशकाल की दृष्टि से एक ही भाषा के भिन्न-2 रूप हो सकते है इसलिए शब्दों के निर्वचन में इस तथ्य को भी ध्यान रखना चाहिए।

समासरहित और अतद्धितान्त शब्दों का निर्वचन करना चाहिए।

तद्धित और समास से बने एक जोड़ तथा अनेक जोड़ वाले शब्दों में सबसे पहले शब्द को और उसके बाद वाले शब्द को विग्रह के द्वारा अलग-अलग करके उनका निर्वचन करना चाहिए।

जैसे दण्डय पुरुषः इसमें 'दण्डय' शब्द का अर्थ है, 'दण्ड के योग्य' 'दण्ड' शब्द धारण अर्थ वाली 'दद' धातु से व्युत्पन्न होता है। अक्रूर मणि को धारण करता है, ऐसा लोग कहते है औपमन्यव का कथन है कि 'दण्ड' को दण्ड 'दण्ड दमन करने के कारण कहते हैं। समास से बना शब्द राजपुरुष अर्थात् राजा का पुरूष राजन् शब्द राज धातु से निष्पन्न होता है। 'पुरुष' पुरुष इसलिए कहलाता है कि वह 'पुर' में निवास करता है।

उपसंहार

निरुक्त के अनुसार सब शब्द व्युत्पन है। वैदिक संहिता का पद पाठ में परिवर्तन निरुक्त पर ही निर्भर करता है। निरुक्त शास्त्र के बिना लोक में तथा वेद में मन्त्रों का विभाग होने पर भी मन्त्रों के विशेष अर्थ का ज्ञान नहीं हो पाता और पद के अर्थ का ज्ञान निरुक्त शास्त्र के बिना वही हो सकता। निरुक्त का मुख्य उदेश्य मन्त्रों के अथवा मन्त्रगत पदों के अर्थों का ज्ञान प्राप्त करना है अर्थो को व जानने वाला व्यक्ति स्वर का यथार्थ ज्ञान और पदविभाग आदि का समुचित ज्ञान नहीं प्राप्त कर

सकता क्योंकि स्वर और विभक्ति आदि के संस्कारों की स्थिति अर्थ के अधीन होती है।

"अथापदिमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थ प्रत्ययो न विद्यते"

इस प्रकार शब्दों का अर्थ या निर्वचन करना निरुक्त का मुख्य उदेश्य है। जिसे समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ज्ञान के भण्डार व्याकरण का पूरक पदों के यथार्थ ज्ञान का बोधन निरुक्त शास्त्र का अध्ययन है। इस प्रकार निरुक्ताचार्य यास्क ने निर्वचन करने के तीन प्रकार का वर्णन किया है- 1. प्रत्यक्षवृत्ति 2. परोक्षवृत्ति 3. अतिपरोक्षवृत्ति

प्रत्यक्षवृत्ति- जिनके प्रकृति प्रत्यय स्पष्ट रूप से सीधे दिखाई देते है उनका निर्वचन व्याकरण के द्वारा हो सकता है इसके लिए निरुक्त की आवश्यकता नही।

परोक्षवृति- शब्दों के अर्थ को ध्यान में रखकर प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना करनी पड़ती है।

अतिपरोक्षवृति- जिन पदों में स्वर और व्याकरण की प्रक्रिया अनुकूल अर्थ वाली हो व धातु में होने वाले उचित परिवर्तन से युक्त हो उसका निर्वचन उसी प्रक्रिया के आधार पर करना चाहिए।

शब्दों के अर्थानुसार प्रकृति प्रत्यय का विभाजन के रूप में निर्वचन करना चाहिए। भाषा के इतिहास को देखना चाहिए शब्दों के निर्वचन के सन्दर्भ में।

देशकाल की दृष्टि से भी एक ही भाषा के भिन्न-भिन्न रूप हो सकते है इस प्रकार निरुक्त में निर्वचन के अनेक प्रकारों का उल्लेख है जिनमें कुछ का वर्णन यहां प्रस्तुत किया गया है निरुक्त का भाषा विज्ञान की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। व्याकरण तथा विज्ञान से निरुक्त का विशेष सम्बन्ध है वेद के मन्त्रों का अर्थ समझने के लिए पहले उनका व्युत्पत्तिपरक अर्थ जान लेना आवश्यक होता है संक्षेप में निरुक्त का विषय वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति बताना है जो कठिन एवं दुरूह शब्द व्याकरण की

पकड़ के बाहर थे उनके अर्थज्ञान के लिए निरुक्त की रचना हुई वस्तुतः निरुक्त ही प्रमाणिक साधन है वैदिक मन्त्रों के अर्थों की जानकारी के लिए विस्तृत प्रमाणिक साधन है। निर्वचन करने से शब्द के सही अर्थ का पता लगाने में सहायता मिलती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैदिक साहित्य का इतिहास, डॉ. पारस नाथ द्विवेदी, चैखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. वैदिक निर्वचन कोष, डॉ. कृष्णलाल, जे. पी. पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
3. वैदिक साहित्य और संस्कृति, पद्यभूषण, शारदा संस्थान, वाराणसी।
4. निरुक्तकार निदर्शन, कुंवरलाल इतिहास विद्या प्रकाशन, दिल्ली।
5 निरुक्तम् डॉ. देवेन्द्रनाथ पाण्डेयु हंस प्रकाशन, चादपोल बाजार, जयपुर।
6. वेदांड़ू (वैदिक वाड़ूंमय का विवेचनात्मक बृहद इतिहास) कुन्द लाल शर्मा, वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।
7. यास्वांमुनिप्रणीत निरुक्तम् परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
8. वैदिक संग्रह एवं व्याख्या, डॉ. बलदेव सिंह मेहरा, आचार्य प्रकाशन रोहतक।